# नूतन निष्काम पत्रिका

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-8 * अंक-4 * मुम्बई * अप्रेल-2017 * मूल्य-रु.9/-

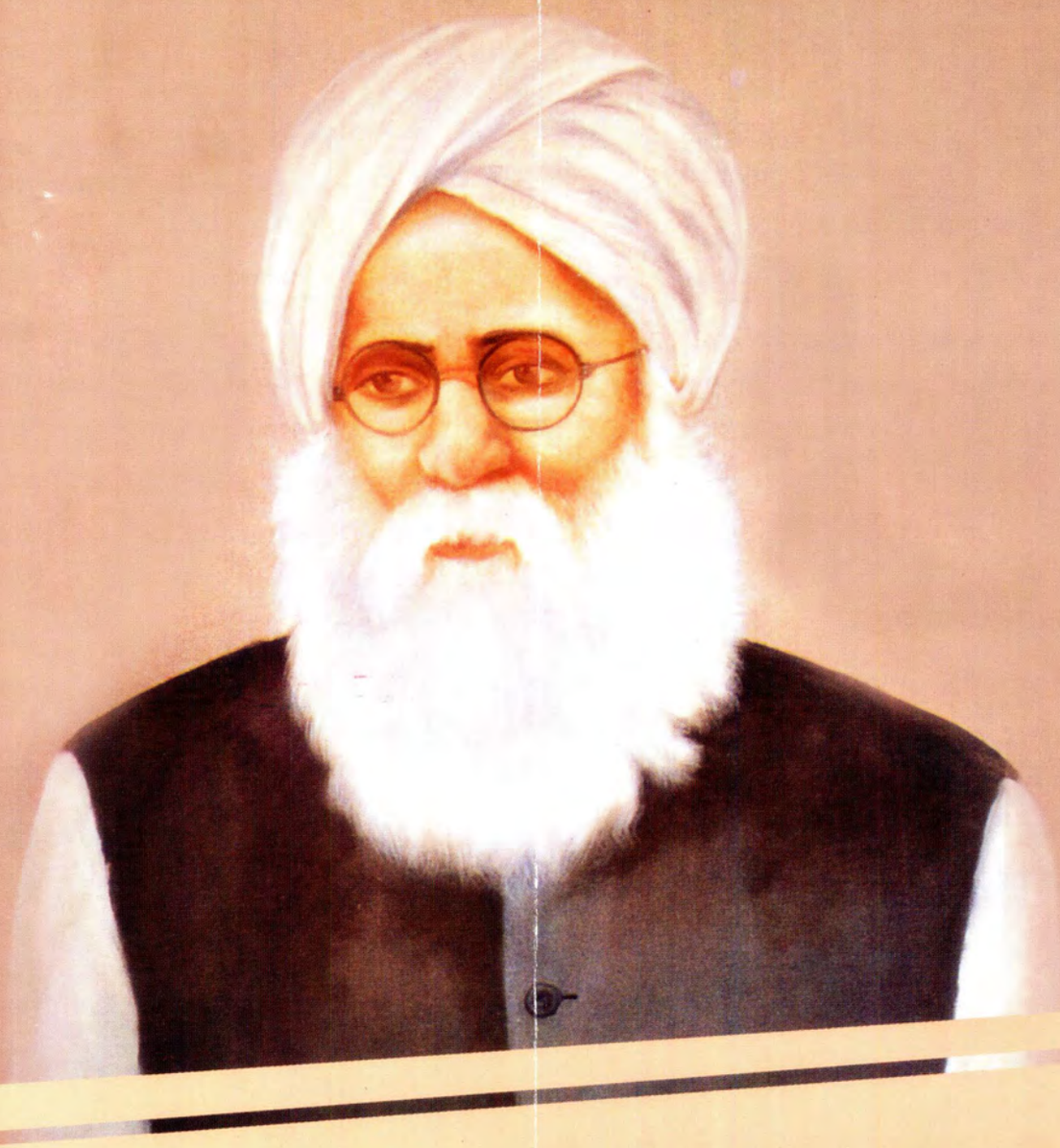

## महात्मा हंसराज

16 अप्रेल 1864 - 15 नवम्बर 1938

# राजा और ब्रह्मचर्य

**स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

वेद की घोषणा हैं-

**ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।**
(अथर्व. ११।५।१६)

ब्रहचर्य के द्वारा राजा राष्ट्र की विशेष रूप से रक्षा करता है।

वैदिक धर्म में राजा के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक बतलाया गया है। राजा का प्रजा पर विशेष प्रभाव पड़ता है। नीतिकारों ने कहा है-

**राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा: पापे पापा: समे समा:।**
**लोकास्तमनु वर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा।।**
(भोज-प्र. १४४)

राजा धार्मिक होता है तो प्रजा भी धार्मिक होती है, राजा पापी होता है तो प्रजा भी पापी होती है। प्रजा तो राजा का अनुकरण करती है। जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही होती है।

यदि राजा ब्रह्मचारी=सदाचारी, संयमी एवं जितेन्द्रिय होगा तो प्रजा=देश के आबाल वृद्ध, नर और नारी सभी ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। यदि राजा व्यभिचारी होगा तो प्रजा सदाचारी और संयमी नहीं बन सकती। अपने सदाचारपूर्ण एवं ब्रह्मचर्यमन जीवन के आधार पर ही तो महाराज अश्वपति ने डिण्डिम घोषत किया था-

**न मे स्तेनो जनपवे न कदर्यो न मद्यप:।**
**नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुत:।।**
(छान्दो. उप. ५।११।५)

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है, फिर व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही कैसे सकती है? राजा में कोई अवगुण नहीं था अत: प्रजा भी धार्मिक, सदाचारी एवं संयमी थी।

यह तो हुई प्राचीन इतिहास की बात। अब तनिक आज के राष्ट्र को देखिये। आज के अधिकांश नेता मांस खाते हैं, शराब पीते हैं, बीड़ी-सिगरेट का सेवन करते हैं, सिने-अभिनेत्रियों के साथ अपना चित्र खिंचवाने में गौरव अनुभव करते हैं और कुछ नेता तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं। जब जनता के प्रतिनिधियों की यह अवस्था है तब जनता की कौन कहे? जनता तो नेताओं के अनुसार ही चलेगी। नेताओं के पदचिह्नों पर चलने के कारण आज मांस का खूब प्रचार है, शराब का दौर-दौरा है, दिन-दहाड़े युवतियों को भगाया जाता है, बीड़ी-सिगरेट का बाजार गर्म है। प्रतिदिन समाचारपत्रों में बलात्कार-सम्बन्धी घटनाओं से कालम के कालम भरे होते हैं। इन सभी बुराइयों का मूल है राष्ट्र-नेताओं में ब्रह्मचर्य का अभाव। ब्रह्मचर्य के अभाव में राजा और प्रजा दोनों नष्ट हो जाते हैं। फ्रांस देश के पतन का कारण क्या था? वहां के युवकों की विलासिता उनमें ब्रह्मचर्य का अभाव। फ्रांस के युवक युवतियों के पीछे भागते थे। कोई भी युवक सेना में भर्ती नहीं होना चाहता था।

राष्ट्र को सशक्त, सुदृढ़, बलवान् एवं तेजस्वी बनाने के लिए वेद ने राजा को ब्रह्मचर्य धारण करने का उपदेश दिया है। वृद्ध चाणक्य जी कहते हैं-

**राज्यमूलमिन्द्रियजय:।**
**(चाणक्य सूत्राणि ४)**

जितेन्द्रिय व्यक्ति ही राज्य-संचालन कर सकता है।
महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

"सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्ते और अधर्म से हटे-हटाये रहें। इसलिए रात-दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय (नहीं है वह) अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर, प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता।"

(सत्यार्थ प्रकाश, षष्ठ समुल्लास)

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक ४ (अपैल - २०१७)

- दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन
रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
( विठ्ठलभाई पटेल मार्ग ) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

| अनुक्रमणिका | पृष्ठ सं. |
|---|---|
| राजा और ब्रह्मचर्य | २ |
| सम्पादकीय | ३ |
| महर्षि दयानंद की राष्ट्रीय विचारधारा | ४-५ |
| हमें अग्नि के नाम का स्मरण करना चाहिए | ६ |
| समाचार/"Benefits of Yagna (Havan)" | ७ |
| भारत वर्ष भ्रष्टाचारियों का देश कैसे और क्यों... | ८-९ |
| धर्म शिक्षा | १०-१२ |
| गायत्री मन्त्र | १३ |
| कविता | १४ |
| महात्मा हंसराजजी | १५-१६ |

सम्पादकीय

# पाखण्ड़ खण्डिनी पताका

महर्षि दयानन्द सरस्वती जब गुरु विरजानन्द की कुटिया से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् पतित हो चुकी आर्य जाति के उद्धार की भावना से प्रचार के लिये निकले तब सर्वप्रथम हरिद्वार के मेले में पाखण्ड़ खण्ड़िनी पताका फहरायी थी। तब अपना प्रभाव श्रोताओं पर न पड़ता देख उन्होंने पुन: घोर तपस्या की थी। उसके प्रश्चात् वे अपने उद् देश्य में सफल हो सके थे।

महर्षि के पूर्व ब्राह्मण के वचन ब्रह्म वाक्य कहलाते थे। जी ब्राह्मण ने कह दिया वही ब्रह्म वाक्य। शूद्र एवं स्त्री को वेद मन्त्र पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं था। वर्ण व्यवस्था जन्मना प्रचलित हो चुकी थी। वैदिक धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियां फैल चुकी थी। विधर्मी उन पर अत्याचार करते जा रहे थे। अन्धाधुंध धर्मान्तरण हो रहा था। ऐसी विकट स्थिति में आर्य जाति को उसका सही धर्म वैदिक धर्म का सही परिप्रेक्ष्य में स्मरण कराकर पाखण्ड़ का विरोध कया। परिणाम स्वरुप आर्य समाज से लाखों लोग जुडे और जन्मना वर्ण व्यवस्था को ठुकराकर अपने नाम के साथ आर्य लिखना शुरू कर दिया। राष्ट्र में समग्र विकास में आर्य समाजियों का महत्वपूर्ण योगदान था। आर्य समाजियों का प्रभाव उस समय इतना गहरा हो चुका था कि न्यायालय कें न्यायधीश तक आर्य समाजी की गवाही को स्वत: प्रमाणित मानते थे। किन्तु शनै: शनै: इस आन्दोलन में कुसंस्कारित वृतियां पुन: प्रवेश करती दिख रही हैं। ऐसी वृतियों को पहचानकर उनसे समाज को बचाना है। आज पाखण्ड़ी नये-नये रुप में आ रहे हैं। सिर्फ महर्षि के ग्रन्थों को रटकर अपने को विद्वान बताने वालों की कमी नहीं है। मनसावाचाकर्मणा तदनुसार ज्ञान-कर्म- उपासना को ही महर्षि ने महत्व दिया है। उसी के अनुरुप में कसौटी अपनाते हुए वैदिक धर्म को आगे लाना है। तभी महर्षि द्वारा स्थापित पाखण्ड़ खण्डिनी पताका को हम सार्थक कर सकते हैं।

- संगीत आर्य
9323 573 892

# महर्षि दयानंद की राष्ट्रीय विचारधारा

कु. वैशाली आर्या

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद सरस्वती को भारत-भूमि से सच्चा प्रेम था। वे इस देश को आर्यावर्त्त कहते थे और इस देश के निवासियों को आर्य। आर्यावर्त्त से उन्हें हिमालय से रामेश्वरम् पर्यन्त यह सम्पूर्ण भारत भूमि अभिप्रेत थी।

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विध्याचल पूर्व और पश्चिम में समुद्र तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषवती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल कर बंगाल में असम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम की और होकर दक्षिण में समुद्र से मिली है। जिसके ब्रह्मपुत्रा कहते है। और जो उत्तर के पहाडो से निकलकर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी से मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों की भीतर और रामेश्वरम् पर्यन्त विध्याचल के भीतर जितने देश हैं उनको आर्यावर्त कहते हैं।'' उनका मन्तव्य था कि ''आर्यावर्त्त'' देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं। उनके विचार में आर्य किसी जाति या धर्म की संज्ञा न होकर इस देश के निवासियों (ऐसे निवासी जिनके पूर्वज सृष्टि के आदि से यहां बसते आये हैं) का नाम था। आर्यों को भाषा की उन्होंने आर्यभाषा की संज्ञा दी। वे चाहते थे कि भारत की राष्ट्रीय एकता को आर्य जाति, आर्य भाषा और आर्यावर्त्त द्वारा एक ठोस आधार प्राप्त हो सके। जिस देश में बंगाल, पंजाब, कश्मीर गुजरात आदि अनेक प्रदेश हों, उनकी बंगाली, पंजाबी आदि अपनी-अपनी भाषाएं हों और जिनके निवासी अपने को पंजाबी, बंगाली, कश्मीरी, आदि कहें, उनमें राष्ट्रीय दृष्टि से एक होने का विचार उत्पन्न कर सकना सुगम नहीं था। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस देश के लिए भारतवर्ष शब्द प्रयुक्त हुआ है और मध्य युग के मुस्लिम बादशाह व सुल्तान इसे हिन्दुस्तान कहते थे। अंग्रेजों ने इसे इंडिया कहना शुरु किया और उनके शासन काल में भारत के शिक्षित वर्ग के लोग भी इसे इण्डिया कहने लगे और अपने को इण्डियन। महर्षि दयानन्द सरस्वती से पहले उन्नीसवी सदी में जो भी अन्य व्यक्ति इस देश में पुर्नजागरण व राष्ट्रीय पुर्नस्थापन के लिए प्रवृत्त हुए, वे इसे कोई स्वदेशी नाम नहीं दे सके और न इसके निवासियों को कोई स्वदेशी संज्ञा। स्वतंत्र भारत के संविधान में इस देश के दो नाम प्रयुक्त किये गये हैं- इण्डिया और भारत। स्वराज्य को प्राप्त हुए लगभग आधी सदी बीत जाने पर भी अब तक इस देश के निवासियों के लिए कोई एक ऐसी स्वदेशी संज्ञा नहीं हुई जो सर्वमान्य हो और जिसे सब कोई प्रमुक्त करते हों। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग चाहे वे हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हों, अपने को इण्डियन तो कहते हैं पर भारतीय न कह कर वे अपने को बंगाली, पंजाबी आदि ही कहते हैं। हिन्दूस्तानी शब्द का प्रयोग भी मुख्यत हिन्दी क्षेत्र के लोगों के लिए ही किया जाता है।

भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए ठोस आधार दे सकने में अब तक भी असमर्थ रहे हैं, पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सम्पूर्ण देश को आर्यावर्त्त कहा और इसके निवासियों को आर्य। राष्ट्रीय एकता के लिए उनकी यह अत्यंत महत्वपूर्ण देन है।

महर्षि की इस देश (आर्यावर्त्त) के प्रति अगाध ममता थी। उन्होंने लिखा है- ''यह आर्यावर्त्त देश है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है। क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। आर्य नाम उत्तम पुरूषों का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश है, वे सब इसी देश की प्रशसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाड्य हो जाते हैं। महर्षि ने भारत के प्राचीन गौरव की और जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने लिखा है कि 'सृष्टि से लेकर पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य थ। अन्य देशमें मण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे, क्योंकि कौरव-पाण्डव यहां के राज्य और राज शासन में भूगोल के सब राजा और प्रजा रहते थे। महाराजा युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ में महाभारत युद्ध पर्यन्त यहां के राजाधीन सब राज्य थे। सुनो! चीन का भागदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरोप देश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आंख वाले यवन जिसको यूनान कहते है और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत-युद्ध में आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के अधीन था। जब रामचंद्र के समय में विरूद्ध हो गया तो उसको रामचंद्र ने दंड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया था''।

प्राचीन काल में आर्यावर्त्त की राज शक्ति बहुत अधिक थी और उसका सम्राज्य रोमन साम्राज्य के समान केवल यूरोप और पश्चिमी एशिया तक ही विस्तृत न होकर सम्पूर्ण भूमण्डल में व्याप्त था, इस बात की ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट कर महर्षि ने आर्यों को अपने लुप्त गौरव की पुर्नस्थापना के लिए प्रेरित किया था। महर्षि ने यह भी प्रतिपादित किया कि प्राचीन समय में आर्यावर्त्त विश्व गुरू था। इसी आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्रह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य विद्या, चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करते थे। जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त्त देश से मिस्रवालो, उनसे यूनानी, उनसे रूस और उनसे यूरोप देश में उनसे अमेरिका आदि देशों में पैली है।

महर्षि का यह भी मन्तव्य था कि विज्ञान में भी प्राचीन आर्यों ने अत्यधिक उन्नति की थी। तोप, बन्दूक आदि जिन अस्त्रों शस्त्रों यान्त्रिक शक्ति से चलने वाले जिन यानों और तार, टेलीफोन आदि संचार के साधनों पर पाश्चात्य लोग अभिमान करते हैं। वे सब और उनसे भी उत्कृष्ट उपकरण प्राचीन आर्यावर्त्त में विद्यमान थे।

महर्षि ने लिखा है- ''तोप और बंदूक नाम अन्य देश भाषा के हैं। संस्कृत और आर्यावर्त्तीय भाषा के नहीं, किन्तु जिसको विदेशी जन तोप कहते है संस्कृत और आर्यभाषा में उसका नाम 'शतघ्नी' और बंदूक को 'भुषुन्डी' कहते हैं। आग्नेयास्त्र, वारूणास्त्र, नागपाश, मोहपाश और पाशुपतास्त्र सदृश जिन अस्त्र-शस्त्रों के नाम प्राचीन, संस्कृत ग्रंथों में आये हैं। महर्षि ने युक्ति पूर्वक यह प्रतिपादित किया कि ये अत्यन्त वैज्ञानिक उपकरण थे, जिनका उपयोग युद्ध में शत्रुओं के संहार के लिए किया जाता था। महर्षि का यह भी मंतव्य था कि वेदों में सब ज्ञान-विज्ञान मूलरूप में विद्यमान है और उनके अध्यन से सृष्टि के सब आधारभूत नियमों व रहस्यों का परिज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। कतिपय वेदमंत्रों की व्याख्या करते हुई उन्होंने अनेक ऐसे वैज्ञानिक तथ्य भी प्रकट किये जो उनके समय में अज्ञात थे। ब्रिटिश शासन काल में अपने धर्म, साहित्य, अतीतकाल और संस्कृति आदि के प्रति भारतीयों में हीन भावना घर कर गयी थी और वे अंग्रेजों के शासन को अपने देश के लिए वरदान समझने लगे थे। उस समय महर्षि दयानन्द के ये मन्तव्य क्रान्ति के प्रचन्ड घोष के समान थे। इटली के पुनरूत्थान, राष्ट्रीय एकता और स्वतन्त्रता के लिए जिस प्रकार रोमन साम्राज्य के प्राचीन गौरव की स्मृति सहायक हुई। उसी प्रकार आर्यावर्त्त के गौरवपूर्ण अर्थात का स्मरण दिलाने से भारतीयों में उस हीन भावना का अन्त हुआ जो ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा के कारण इस देश में उत्पन्न हो गयी थी। भारत की राष्ट्रीय एकता और स्वराज्य के लिए महर्षि का यह अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान था। जब भारत प्राचीन काल में विश्व का सर्वाधिक देश रह चुका है और वह कातिपथ कारणों से कुछ समय के लिए उन्नति की दौड़ में पीछे रहा गया है और विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त कर लिया गया तो इसमें निराशा या हीन भावना की क्या बात है? महर्षि ने उन कारणों का भी विवेचन किया है जिनसे इस देश की अवनति आरम्भ हुई। उन्होंने लिखा है कि 'यह संसार की स्वाभाविक प्रवृति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुपार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है इससे देश में विधा, सुक्षिक्षा नष्ट और दुर्गण, दुष्टव्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मास, मद्य, सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचार आदि दोष बढ़ जाते है। जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष आ जाते हैं, तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा पुरूष खडा होता है कि उनको पराजय करने में समर्थ होवें। राज्यों, राजवंशों और राष्ट्रों के:पतन के कारणों का महर्षि ने कितना सुन्दर युक्ति युक्त विवेचन किया है। परम प्रतापी रोमन सम्राटों के पतन का भी यही कारण था। साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों से जो कोटि-कोटि धनराशि उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे केवल निरंकुश व स्वेच्छाचारी ही हो गये थे अपितु भोग विलास में फंस कर अपने शासन कार्यों के प्रति भी विमुख हो गये थे। भारत में मुगल साम्राज्य की शक्ति के क्षीण होने का भी यही कारण था। मुगल सेनापति युद्ध के लिए अभियान करते समय भी रेशम के तम्बुओं में रहने लगे थे। उनके पटमण्डपों में भोग-विलास के सब साधन उपलब्ध रहा करते थे। उसके विपरीत मराठे सैनिक भुने हुए चनों की थैली पीठ पर बांध कर रणक्षेत्र में उतरा करते थे। आराम व भोग विलास में जीवन बिताने वाले मुगल सैनिक उनका क्या मुकाबला करते। अत्यन्त प्राचीन काल में कुरूदेश की राजशक्ति कुरुवंश के जिन सम्राटों के हाथों में थी, वे भी अत्यधिक सम्पन्नता के कारण अपने राजकीय कर्त्तव्यों से विमुख हो गये थे। राजा युधिष्ठिर ने तो अपनी पत्नी तक को दाव पर लगा दिया था। ऐसे राजाओं के कारण यदि आर्यावर्त की यादि आर्यावर्त्त की राजशक्ति का पतन होने लगा, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? महर्षि का मन्तव्य था कि- विदेशियों के आर्यवर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मधर्म का सेवन न करना, विद्या ना पढ़ना-पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वंयवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या-भाषण व वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं।'' जब आपस में भाई-भाई लड़ते है, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें, जो पांच सहस्र वर्ष पूर्व हुई थी उनको भूल गये। देखो! आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो ही गया। परन्तु अब तक भी यही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्यों को सब सुखों को छूड़ा कर दु:खसागर में डूबा मारेगा। इसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेशे विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दु:ख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे, कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जावे''।

पत्ता- ६-१४३३ जवाहर पार्क बेहर रोड,
सहरनपुर उ.प्र.-२४७००१

## सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल का शिविर २८ मई २०१७ से ४ जून २०१७

सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल के तत्वावधान में वार्षिक शिविर २०१७, भगवती आर्ष कन्या गुरूकुल महाविद्यालय रेवाड़ी में दिनांक २८ मई २०१७ से ४ जून २०१७ तक लगाया जायेगा।

वीरांगनाओं को वैदिक सिद्धांतों का ज्ञान, व्यक्तित्व विकास एवं आत्मरक्षण प्रशिक्षण शिविर में भेजने के लिए संपर्क करें।

**साध्वी डॉ. उत्तमायति**
प्रधान संचालिका

**मृदुला चौहान**
संचालिका
मो.: ९८१०७०२७६०

**आरती खुराना**
सचिव
मो. : ९९१०२३४५९५

# हमें अग्नि के नाम का स्मरण करना चाहिए

आचार्य प्रियव्रत

**अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां**
**मनामहे चारु देवस्य नाम।**
**स नो मह्या अदितये पुनर्दात्**
**पितरं च दृशेयं मातरं च।।२।।**

**अर्थ-(वयम्)** हम **(अमृतानाम्)** अमृतों में से **(प्रथमस्य)** पहले **(अग्नेः)** अग्नि **(देवस्य)** देव का **(चारु)** सुन्दर **(नाम)** नाम **(मनामहे)** मनन करें, जानें **(सः)** उसने **(नः)** हमें **(मह्यै)** महान् गणोंवाली **(अदितये)** अदिति के लिए **(पुनः)** फिर से **(दात्)** दिया है, जिससे कि मैं **(पितरम्)** पिता को **(च-च)** और (मातरम्) माता को **(दृशेयम्)** देखूँ।

अदिति के साथ हमारा सम्बन्ध फिर से जोड़नेवाला और इस प्रकार हमें माता-पिता के दर्शन करानेवाला वह देव अग्नि है। अदिति से हमारा सम्बन्ध एक बार छूट चुका था। हम एक बार अदिति की क्षेत्र-सीमा से बाहर जा चुके थे और इस प्रकार जन्म-मरण के चक्र से परे होकर हम माताओं और पिताओं के साथ सम्बन्ध से पृथक् हो चुके थे। अग्निदेव ने हमें अदिति और जन्म-मरण के फेर में फिर से फेर दिया है।

यह अदिति, जिसकी सीमाओं के भीतर आकर हम जन्म-मरण के फेर में फिरने लगते हैं, कौन है? कहना न होगा कि यह अदिति विचित्र रचना-चतुरा प्रकृति के अतिरिक्त और कोई नहीं है। अदिति शब्द का धात्वर्थ होता है जो दीन और खण्डनीय न हो। प्रकृति अदीन है। वह अनल्प है। प्रकृति की विभिन्न शक्तियों और उसके नये-नये रूपों का अन्त नहीं है। जितना ही अन्वेषण करो उतना ही उसकी नई-नई शक्तियों और नये-नये रूपों का आविष्कार होता जाता है। उसमें कहीं दीनता, क्षीणता और अल्पता नहीं है। वह अदीना है, अनल्पा है। प्रकृति अखण्डनीया भी है। उसका सर्वथा खण्डन, सर्वथा नाश कोई नहीं कर सकता। उसे तोड़ने का-नष्ट करने का प्रयत्न करो, वह नये-नये रूप बदलती जाएगी, स्थूल से सूक्ष्म अवस्थाओं में बदलती जाएगी, परन्तु अपनी सत्ता को कभी न छोड़ेगी। उसका सर्वथा अभाव कभी न किया जा सकेगा। वह एक नहीं तो दूसरों रूप में सदा ही बनी रहेगी। वह अखण्डनीया है, अविनाश्या हैं। अदिति को शास्त्र में स्थान-स्थान पर देवमाता कहा गया है। ऐसी देवमाता प्रकृति ही है। सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, अग्नि और पृथिवी आदि देव प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं। प्रकृति ही इन सब देवों का निर्माण करनेवाली- इनकी माता है। ये सब देव प्रकृति के ही गर्भ से निकले हैं। यजुर्वेद (२९।६०) में अदिति को विष्णुपत्नी कहा गया है। विष्णु चराचर विश्वब्रह्माण्ड में व्यापक परमात्मा हैं। अदिति उनकी पत्नी है, क्योंकि वे उसकी सहायता से, उसके साथ मिलकर, समग्र विश्व की रचना करते हैं। भगवान् जिस अदिति को लेकर इसके द्वारा विश्व की सृष्टि करते हैं, वह प्रकृति ही है। यास्क के निघण्टु (४।१) की व्याख्या करते हुए देवराज यज्वा तक ने अदिति का एक प्रसिद्ध अर्थ प्रकृति किया है। वेद में स्थान-स्थान पर पाये जानेवाले आदिति के वर्णनों से भी स्पष्ट पता लगता है कि वेद में उसका एक प्रसिद्ध अर्थ विश्व-रचना की सामग्री, जगत्प्रपञ्च का मूल उपादानकारक प्रकृति भी है। अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों में अनेक जगह अदिति का अर्थ पृथिवी किया गया है। यास्काचार्य ने निघण्टु (१।१) में वेद में पाये जानेवाले पृथिवी के नामों को जहाँ गिनाया है वहाँ उनमें अदिति नाम भी दिया है। इस प्रकार अदिति का अर्थ पृथिवी तो स्पष्ट है ही। पृथिवी सारे ब्रह्माण्ड में प्रपञ्चित हो रही प्रकृति का ही एक अंश है, इसलिए अदिति का अर्थ पृथिवी लेकर उसके सहारे अदिति का अर्थ पृथिवी का करण प्रकृति भी किया जा सकता है।

यह अदिति मही है। यह अपने गुणों के कारण बड़ी महिमा-शालिनी है। सचमुच ही प्रकृति मही है। उसकी महिमा का कोई अन्त नहीं है। उसके गुणों और उसकी शक्तियों का पार नहीं पाया जा सकता। वैज्ञानिक जितना ही अन्वेषण करता जाता है उतना ही उसे प्रकृति के नये-नये गुणों और नई-नई शक्तियों का पता लगता जाता है। सबको अपनी उष्णता और प्रकाश से जीवन प्रदान करनेवाला सूर्य प्रकृति के गर्भ से ही निकला है। रात के समय अपनी अमृत बरसानेवाली चन्द्रिका से प्राणियों के सन्तप्त हृदयों को शान्ति देनेवाला चन्द्रमा प्रकृति से ही बना है। निरन्तर गति-शील रहकर सबको प्राण देनेवाला वायु प्रकृति के उदर से ही तो आया है। निशा के अन्धकार में भी असंख्य आँखों से झाँकनेवाले नभोमण्डल के तारे प्रकृति की ही तो विभूति हैं। वर्षा के समय आकाश में घटाएँ बाँधकर उमड़ने और घुमड़नेवाले बादल, वर्षाकाल की मनमोहक मुक्ता-माला-सी जल-इड़ियाँ, बादलों की छातियों पर चमकनेवाली विद्युन्मालाएँ और इन्द्रधनुषों की सौ-सौ रंगों से रञ्जित घटाएँ-सब प्रकृति का ही तो लीला-विलास हैं। पर्वतों की हिम-मण्डित शिखाएँ, उनकी सघन वन- मालाएँ, उनमें कल-कल ध्वनि से झर रहे चाँदी के से शुभ्र झरने, उनसे बनकर बह रहीं भीमकाय और भीमवेगवाली नदियाँ, इन नदियों का अन्तिम बसेरा अगाध, असीम, अनन्त जलराशि का पुञ्ज समुद्र, उसकी छाती पर नाचनेवाली पर्वताकार उत्तुङ्ग तरङ्गें, और उसके गर्भ में बिखरे हुए अनन्त रत्न-सब प्रकृति के विलास की ही तो छटा हैं। पर्वत-शिखरों वनमालाओं और वहाँ से आकर हमारी उद्यान-वाटिकाओं को नयनाभिराम बनानेवाले रंग-बिरंगे फूल, कोकिल की कूज, भ्रमर का गुंजन, युवती का निष्कलंक रूप-लावण्य-सब प्रकृति के विभ्रमों के ही तो उद्गार हैं। धरती की छाती में से निकलनेवाले सोना, चाँदी, हीरे-माणिक्य, लोहा, तांबा, सीसा, तेल और अन्य अनन्त वस्तुएँ, जिनके विज्ञान से परिष्कृत रूप-रूपान्तर मानव सभ्यता को इतना उज्ज्वल और मोहक बना रहे हैं, सब प्रकृति की ही तो देन हैं। रात्रि के समय हमारे घरों और नगर-मार्गों को आलोकित करनेवाला, वैज्ञानिक यन्त्रों में बँधकर लक्ष कोस की बात क्षणभर में हमें सुना देने और दिखा देनेवाली विद्युत् की अप्रतर्क्य और प्रचण्ड महाशक्ति प्रकृति की शक्तियों का ही तो एक छोटा-सा विजृम्भण है। प्रकृति सचमुच मही है। उसकी महिमा का कोई अन्त नहीं है।

यह महामहिमशालिनी अदिति- प्रकृति हमें अमृतदेवों में प्रथम स्थानवाले अग्निदेव ने प्रदान की है। इस देव ने ही हमारा इसके साथ सम्बन्ध जोड़ा है। प्रकृति से जगत् की रचना करके उसमें कर्मानुसार हमें भाँति-भाँति के फल-भोग कराने के लिए शरीरों के चोले पहनाकर उस देव ने हमें इस जगत् में भेजा है। इस जगत् में रहते हुए हमारा जीवन जब सर्वथा निष्कलंक

रीति से बीतने लगता है, जब हमारा जीवन पूर्ण ज्ञानयुक्त और नियमित बनकर बीतने लगता है, जब हमारा जीवन पूर्ण ज्ञानयुक्त और नियमित बनकर बीतने लगता है, तब यह अदिति का बना हुआ संसार हमें अदिक-से-से अधिक सुख देता है। हम जितने समय इसमें रहते हैं आनन्द में रहते हैं। इस प्रकार का ज्ञानयुक्त, नियमित और पवित्रता का जीवन बिताते हुए एक समय ऐसा आता है जब ये अग्निदेव हमपर प्रसन्न होकर हमें और भी अधिक आनन्द का उपभोग कराना चाहते हैं। तब वे हमें अदिति से-अदिति के बने संसार से बाहर कर देते हैं। तब वे हमें प्रकृति के क्षेत्र से ऊपर उठा लेते है। तब वे हमें ऐसे धाम में, स्थान में ले- जाते हैं जहाँ अमृत -ही-अमृत है, जहाँ अमृत के अभिलाषी सदा जाना चाहते हैं। वह अमृतमय धाम है उन देव का अपना आनन्दमयस्वरूप। तब वे हमें अदिति के आवरणों से पृथक् करके अपने अमृतमयस्वरूप का साक्षात्कार करा देते है। उस साक्षात्कार के परिणामस्वरूप हम भी अमृतमय बन जाते हैं। आनन्दमय का साक्षात्कार हमें भी आनन्दयुक्त कर देता है। हम उस आनन्दमय का साक्षात्कार करते हुए उसमें विचरण करने लगते हैं। हमारी यह अवस्था हो जाती है, जिसका वर्णन वेद में-

**यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।**

''जिस तृतीय धाम में ज्ञानी आत्मा अमृत का उपभोग करते हुए विचरण करते हैं।''

इन शब्दों में किया गया है। वे देव तो अमृत हैं ही, हम भी उनके अमृतों में से, अनेक मुक्तों में से, प्रथम अमृत-सहजरूप से मुक्त द्वारा हमारे अदिति के चक्र में भेजे जाने का वर्णन है, इसलिए इनमें हमारे मोक्ष से वापस भेजे जाने का वर्णन ही प्रतीत होता है। मन्त्रों में ''अमृतानाम्'' पद के प्रयोग का यही स्वारस्य है।

मन्त्रों में प्रयुक्त अदिति शब्द से भी यही ध्वनित होता है। अदिति शब्द प्रकृति का वाचक है। अग्निदेव ने फिर से हमारा सम्बन्ध अदिति के साथ जोड़ा हैं, फिर से सम्बन्ध जोड़ने की यह स्पष्ट अर्थापत्ति है कि एक-बार हमारा सम्बन्ध अदिति पद-वाच्य प्रकृति से नहीं रहा था। जब हमारा सम्बन्ध प्रकृति से सर्वथा न रहे वह अवस्था मोक्ष में ही उत्पन्न होती है। मोक्ष के बिना की अवस्था में हमारा सम्बन्ध प्रकृति से किसी-न-किसी अंश में बना ही रहता है। हम प्रकृति के प्रभाव से मोक्ष में ही पूरी तरह दूर होते हैं और किसी अवस्था में हम उसके प्रभाव से बाहर नहीं जा सकते। अमृतों में प्रथम अमृत अग्निदेव ने, फिर से हमें अदिति के लिए दिया है। मन्त्र के इस कथन में प्रयुक्त अदितिपद, जोकि समग्र प्रकृति का वाचक है, की यही यही ध्वनि है कि यह वर्णन मोक्ष से पुनरावृत्ति का है।

जो अग्नि अमृतों में प्रथम अमृत है, जो मोक्ष का सुख भुगाकर, फिर हमें जगत् के चक्र में लाकर रख देता है और इस प्रकार जन्म-मरण के फेर में लाकर हमें माता-पिता के दर्शन करा देता है, जिसका सुन्दर नाम हमारे लिए जानने और मनन करने के योग्य है, वह अग्निदेव आनन्द के धाम विश्व के नियन्ता परमात्मा देव से भिन्न और कोई नहीं है, यह तो पाठक स्वयं ही समझ लेंगे। वेद के अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि सब नाम अध्यात्म-दृष्टि में इसी परमदेव परमात्मा के हैं, क्रमशः.....

## समाचार

वैदिक मिशन मुम्बई द्वारा आर्य समाज सांताक्रुज के प्रांगण में १८ व १९ मार्च २०१७ को 'वेदों में चिकित्सा विज्ञान' विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया। इस संगोष्ठी में भाग लेने के लिए भारत भर से प्रसिद्ध सन्यासी गण, विद्वान व डॉक्टर्स पधारे थे जिनमें स्वामी आर्यवेश जी, प्रणवानन्द जी, डा. सूर्यादेवी, डा. पवित्रा, डा. श्वेकेतु, डॉ. सहदेव आर्य, डा. विनायक तायडे आदि प्रमुख थे।

इस कार्यक्रम में आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के प्रधान श्री मिठाईलाल जी व मंत्री अरुण अबरोल जी भी उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि वेदों में अनेक प्रकार का ज्ञान भरा पड़ा है। उसी प्रकार चिकित्सा पद्धति के बारे में भी समस्त जानकारी उपलब्ध है। इसी प्रकार वेदों के अनेक मन्त्रों में यज्ञ चिकित्सा भी बताई गयी है। जिससे हम भिन्न-भिन्न जड़ी बूटियों को हवन में डाल कर अनेक व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत ''वेद-वेदांत ज्योतिष'' पुस्तक का विमोचन भी किया गया। अंत में वैदिक मिशन के अध्यक्ष डॉ. सोमदेव शास्त्री जी ने सबका धन्यवाद किया।

## "Benefits of yagna (Havan)"

There are two basic energy systems in the physical world: heat and sound. In performing Yagya, these two energies, namely, the heat from Yagya's fire and the sound of the chanting of the Gayatri and other Vedic Mantras, are blended together to achieve the desired physical, psychological and spiritual benefits. Purification of environment.

Till recently it was accepted that research into science can furnish answer to all of man's problems. Today we find increasing number of diseases including malfunctioning of body organs due to increasing severity of pollution in the atmosphere. Experimental studies show that the incidence of physical ailments, sickness and disease are reduced in the houses, where the Yagya is regularly performed.

The power of sound vibrations is long since acknowldged in the field of science. These vibrations can penetrate the energy spheres at the subtle and cosmic levels. All the alphabets of the Sanskrit language are endowed with special vibrational powers, which set out harmonious wave patterns when pronounced. It is interesting to note that an American Scientist has established that recitation of Gayatri Mantra produces 110,00 sound waves per second.

If all citizens perform Yajna daily, as was prevalent in the Vedic age, this statement will not be an airy imagination but will again become a reality, as it was then. Today, the vexation and intricate problems of the atmospheric pollution are endangering human existence on earth. This serious challenge can be best controlled and eradicated, along with other means by the device of Yajna also and the congenial changes can be brought about by further discovering the materials for oblations more suited to our present needs.

**Sandeep Arya**
Mob.: 9969037837

# भारत वर्ष भ्रष्टाचारियों का देश कैसे और क्यों बनता जा रहा है

पं. उम्मेद सिंह विशारद
मो.: ९४११५१२०१९

युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते है कि ऐसे शक्तिशाली महान भारत देश का आज क्या से क्या हो गया है। इस देश का पतन महाभारत युद्ध के एक हजार वर्ष पूर्व ही होना आरम्भ हो गया था, और देश की दुर्दशा का इतिहास बनता चला गया। वेद का पठन पाठन छूटने से घोर अविद्या के फैल जाने से नाना मत पंथो के प्रचलित हो जाने से और परस्पर के विरोध से यहां विदेसियो ने इस भारत रुपी सोने की चिड़िया को गुलामी के पिंजरे में बन्द कर लिया था।

हम किस किस को दोष दें, हमारे नाना सम्प्रदायवाद नाना जातिवाद और क्षेत्रवाद तथा व्यक्ति वाद से इस देश में फूट का बीज बोकर इस देश को दुदर्शा के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। विशेष कर भारत के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात यहाँ के मनुष्यों के मानवता का पतन होता आ रहा है। शास्त्रो में कहा है जो ईश्वरीय धर्म का हनन करता है, धर्म उसका अवश्य हनन कर देता है। क्योंकि अत्याचार और अनीति करने वाले से बड़ा अत्याचार को सहने वाला अधिक पापी होता हैं। सत्य की उपेक्षावृति ने ही इस देश को पतन की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है। जिस देश की छाती पर दुश्मन सहस्त्रो वर्षों तक सवार रहा हो फिर भी यह जीवित रह रहा है इस का कारण अवश्य है

यह नितान्त सत्य है, कि कहीं न कहीं ईश्वरीय वेदिक धर्म का बीज का अस्तित्व शेष रह गया है, जिस कारण भारत जीवित है। क्योंकि प्रमाण है जिस देश का छ: हजार वर्ष से पतन ही पतन होता जा रहा हो फिर भी जीवित है, खड़ा है।

### भ्रष्टाचार और चोरी करने की आदत कहां से आई?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के ६८ वर्ष हो गये है और यह संस्कार हमारे रक्त का अंग बन चुके हे इसका कारण यह है कि भारत के नागरिको को चोरी और झूठ बोलने की आदत मुसलमानों से आई। अत: साढ़े सात सौ वर्ष की गुलामी में सारे दुर्गण मुसलमानो से ही आये इससे पहले भारतीय न झूठ बोलते थे व न चोरी करते थे। वैसे बुराई तो अंग्रेजो से भी आयी पर उतनी नहीं। अंग्रेज गवर्नर लार्ड मैकाले ने अपनी संस्कृति फैलाने के लिये दुरदर्शी कार्य किया कि भारत की शिक्षा पद्धति में अंग्रेजीयत का बीज डाल दिया, परिणाम स्वरुप आज भारत में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कारों का वह बीज विशाल वृक्ष बन गया है।

मै एक कारण और भी मानता हूँ की महाभारत युद्ध के पश्चात भारत में भारतीय प्रजा में ९० प्रतीशत वर्णशंकरता आ चुकी है, चाण्क्य के अनुसार वर्णशंकरता सर्वनाम का ही कारण बनती है।

### देवताओं का यह देश अपनो द्वारा ही लुटेरो का देश बनता जा रहा है? कैसे

ईश्वर का मूल स्वरूप

१. ईश्वर उसे नहीं कहते जो कभी हो। और कभी न हो ईश्वर सदैव है पहले भी था और अब भी है और आगे भी रहेगा अथार्त ईश्वर सर्व कालिक है।

२. ईश्वर उसे भी नहीं कहते जो कही हो और कहीं न हो वह सर्व व्यापक है, कण-कण में हैं अमूर्त है अत: वह यहां भी है, अपने में भी हे, और बाहर भी है।

३. ईश्वर उसे भी नहीं कहते जो किसी का हो और किसी का न हो। सबका होने से वह सर्वव्यापक है, अत: वह सर्वेश्वर निराकार, सर्व शक्तिमान, अजन्मा और सर्वान्तयामी है शरीर रहित है, सूक्ष्मदर्शी है, सर्व देशि है।

### ईश्वर के नाम पर भ्रष्टाचार

इतिहास साक्षी है इस संसार में जितना नर सहांर व शोषण ईश्वर के नाम से हुआ है और अब भी हो रहा है, उतना अन्य किसी विषय पर नहीं हुआ है। ईश्वरीय वाणी वेद ज्ञान से शून्य चतुर लोगो ने ईश्वर को अवतार लेना, व जन्मा, व मूर्तिमान मानकर भोली-भाली जनता को ईश्वर के सत्य स्वरूप से भटका कर अपनी-अपनी दुकान दारी, खूब चमका रहे हैं वास्तव में ईश्वर के नाम से जनता का अपार शोषण हुआ है और हो रहा है। यह ईश्वररीय नाम पर भ्रष्टाचार हैं अपने-अपने मन्दिरों में महापुरुषो की मूर्तियां लगा कर, उनको ईश्वर मान अध्यात्म भूल कर रहें है। प्राणी मात्र को एक निराकार ईश्वर को ही मानकर सार्व शोम सुख मिल सकता है।

### धर्म का स्वरूप

### धर्म एवो हतो हन्ति धर्मो रक्षिति रक्षित

जे मनुष्य धर्म का नाश करता है धर्म उसका नाश करता हैं अर्थात प्रत्येक कृत्य या पदार्थ को उसके गुण क्रमानुसार व सृष्टि क्रमानुसार मानना, प्राणी मात्र के साथ अनुकूल व्यवहार करना, कृत्य अकृत्य का विचार करना, तथा जैसा हम दूसरो से अपने लिये चाहते है, वैसा ही दूसरो से व्यवहार करना, व ईश्वरीय व्यवस्था सृष्टि क्रमानुसार, व विज्ञान के अनुसार सत्य असत्य विचार कर चलना धर्म है

### धर्म के नाम पर भ्रष्टाचार

मनु स्मृति में कहा है जहां देखते देखते अधर्म से धर्म और असत्य से सत्य मारा जाता हो वे सबके सब मरे हुओं के समान हैं वास्तव में जिस ज्ञान धर्म पर हम जीते है वह हमारा स्वाभाविक ज्ञान नहीं होता, अपितु हम पर थोपा हुआ होता है। हम हिन्दु मुसलमान सिख, ईसाई, पारसी, जैन, इत्यादि क्यो होते है, क्योंकि हमने उन परिवारों में जन्म लिया होता है, और पैदा होते ही हम पर अपने-अपने मान्य धर्मों की मान्यताओ से पाला पोसा जाता है और उसी की पूजा पद्धति से हमें संस्कारित किया जाता है, हम अपनी बोली नहीं बोलते, बल्कि उस धर्म व मत की बोली बोलते है। उसके खिलाफ कुछ नहीं सुनना चाहते उसे अपना सम्मान व कर्म समझते हैं और सारा जीवन उसी मे पीढ़ी दर पीढ़ गुजारते चले जाते हैं। तथा सत्य धर्म अर्थात ईश्वरीय व्यवस्था व परोपकारी, सर्व हितकारी मान्यताओं पर पर्दा डाल देते हैं। और अपनी तथा कथित मान्यताओं के लिये संघर्ष करते रहते है। उससे मानव जगत में धर्म के नाम भ्रष्टाचार फैलता जाता है। मत मतान्तर आपस में विरोधाभास पैदा करते हैं।

### जाति के नाम पर भ्रष्टाचार

ईश्वर ने मनुष्य पशु, पक्षी, साप बिच्छु, गाय, घोडा व अनेक भिन्न-भिन्न जातियां बनाई है और वह अपने स्वरूप में जन्म से मृत्यु तक बनी रहती है अलग-अलग शरीर होने से अलग-अलग जाति की पहचान बनाई है। मनुष्यों में ईश्वर ने केवल मनुष्य जाति बनाई है, और अपने-अपने गुण क्रमानुसार विद्वानों ने वर्ण घोषित किये है। किन्तु हमने अपने अज्ञान से हजारो तथा कथित जातियां बना ली है, और उसमें ही हम मनुष्यों में छोटा बड़ा ऊंच नीच जातियाँ मानते हैं, जबकि उन जातियों की मूल उत्पत्ति अथार्त मान्यता का हमें इतिहास का भी ज्ञान नही होता। अतएव जातियों के नाम पर महाभारत काल से कुछ वर्ष पहले से अब तक संसार में महा भ्रष्टाचार फैला हुआ हैं जो ईश्वरीय व्यवस्था के विरुद्ध है।

### राजनीति का स्वरूप व भ्रष्टाचार

राजनीति का आधार रूढ़ियों व सामाजिक कुरुतियों, अन्धविश्वासों, जाति रहित सम्पन व गरीब मान्यताओं रहित, व सबको समान अधिकारों से वंचित बुराईयों का उन्मूलन करना राजनीति का आधार होना चाहिए था। किन्तु आज वैदिक धार्मिक मान्यताओं, व राजनीति विद्वानो के नेतृत्व के अभाव में राजनीति में भ्रष्टाचार की बाढ़ आ रखी है। यही कारण है, जनता में आलस्य, परस्पर विरोध, स्वार्थ, सवर्दा निज हित, जाति पांति की राजनति में भ्रष्टाचार फैला हुआ हैं समाज के चंहु मुखी विकास का कारण धर्मशक्ति + राजशक्ति + ज्ञानशक्ति + धनशक्ति के गठनबन्धन से समाज का सच्चा उत्थान होता है इसलिये, भारत का नेतृत्व विद्वानो के हाथ मे ही होना चाहिए। इसके लिये भारत को कालन्तर में स्वस्थय नेतृत्व प्रदान के लिये राजनीति कालेजो की स्थापना व उससे उत्तीर्ण अभ्यार्थी को ही चुनाव लड़ने को अधिकार देना होगा, तभी कुशल विद्वानो के हाथ नेतृत्व जावेगा।

### आज के युग में भौतिकवाद व आध्यात्म वाद का संघार्ष

धर्म व भौतिक संघर्ष में हमे वैज्ञानिक ईश्वरीय परक आधार खोजना होगा। क्योंकि ईश्वर व विज्ञान सत्य पर आधारित है। सत्य ज्ञान मानव को अज्ञान से दूर कर सृष्टिक्रम का ज्ञान देता हैं और वही कार्य धर्म का है, जब धर्म की मान्यताएं वैज्ञानिक और परोपकारी आधार पर होती है तो वह कल्याण कारी होता है। वस्तु या धर्म का अच्छा या खराब उसके उपयोग पर होता है, जैसे एक चाकू सर्जन के हाथ में परोपकार और आतातार्ई के हाथ में हत्या का कारण बनता है। सृष्टिक्रम व विज्ञान के व ईश्वरीय धर्म के बिना धर्म अधूरा है।

### अन्त में आत्म निवेदन

आज भौतिक वाद व विज्ञान चरम सीमा पर प्रगति कर रहा है, सत्य आध्यात्म वाद व मानव नैतिकता के आचरण गिरते जा रहे हैं। मानो मानवता कहीं खोती जा रही हो। जहां विज्ञान व मानव के नैतिक चरित्र का समन्वय होना चाहिए था, वहां दोनो विधाएँ प्रथक प्रथक मार्ग पर चल रही है जिसके कारण मानव जगत में नैतिक पतन होता जा रहा है, और भारत वासी अधिकांश मनुष्य अवसर वादी होकर उनके संस्कार लूट और भ्रष्टाचार के ओर जा रहे हैं। आज आध्यात्म नेतृत्व, सामाजिक सुधार नेतृत्व, राजनीति को एक जुट, होकर भारत वर्ष को भ्रष्टाचारियों का देश होने से बचाना होगा।

पृष्ठ १३ से चालू....

करके करना चाहिये। अथवा दोनों समय उत्तर की ओर मुख रखा जा सकता है।

(४) मानस जप सब से श्रेष्ठ माना गया है। जहाँ तक हो सके जप मन से ही करना उचित है परन्तु कई साधक कहते हैं कि यदि वे ध्वनि से जप न करें तो मन भागने लगता है। ऐसे साधक अपनी प्रकृति और सुविधा के अनुसार उपांशु (मौन रह कर परन्तु कण्ठ को प्रयोग में लगाते हुए या ओठ हिलाते हुए) भी जप कर सकते हैं परन्तु इस वाचिक या उपांशु जप में उच्चारण मुँह में ही होना चाहिए। ध्वनि इतनी हो कि दूसरा इस मन्त्र को सुन न सके।

(५) साधक को पूरी सावधानी से अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अपनी प्रकृती के अनुकूल सात्त्विक भोजन करना चाहिए। अधिक मिरच, मसाले चंचलता बढ़ाते रहते हैं। रोग निवृत्ति के लिए इन का प्रयोग हानिकर नहीं।

(६ ) गायत्री के जप के लिए एकान्त शान्त स्थान होना चाहिए। वर्ष भर में एक दो बार तो अवश्य किसी सुन्दर वन में जाकर गायत्री अनुष्ठान करना चाहिए।

(७) गायत्री अनुष्ठान का प्रयोजन यह है कि सवा लाख या ग्यारह लाख या एक करोड़ गायत्री जप का व्रत लिया जाता है और उसे अपनों सामर्थ्यानुसार एक पक्ष, चालीस दिन या छः मास अथवा तीन वर्ष में पूर्ण करने का संकल्प किया जाता है। तब कुछ विशेष नियम भी होते हैं।

(१) भूमि या तख्त पर सोना (२) एक समय भोजन और दूसरे समय अल्प दुग्ध दुग्धपान या फलाहार करना। (३) सप्ताह में एक दिन के अतिरिक्त मौन रहना या सर्वथा मौन रहना या दिन में एक ही घण्टा बोलना अथवा जैसा सुभीता हो वैसा व्रत ले लेना। और फिर उस व्रत को पूरा करना। (४) ब्रह्मचर्य का पालन करना।

(८) प्रतिदिन गायत्री जप करने के लिए भी नियम बना लेना चाहिए। अपनी सामर्थ्यानुसार एक सौ.एक हजार, पाँच हजार, दस हजार या जितना जप प्रतिदिन हो सके उसका व्रत लेकर उसी पर आचरण करते चले जाना चाहिए।

(९) यदि रोग अथवा किसी कारण से विघ्न पड़ जाय तो समय मिलने पर वह कमी पूरी कर लेनी चाहिए।

(१०) गायत्री-मन्त्र की साधना एक बहुत बड़ी साधना है। पूरी श्रद्य भक्ति के साथ दृढ़ विश्वासी बन कर इसे साधना चाहिए। यह निश्चित जानिए कि इस मन्त्र के सम्यगनुष्ठान से साधक के लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे।

किसी ने ठीक कहा है-

**महामन्त्र जितने जग माहीं, कोऊ गायत्री सम नाहीं।**
**सुमिरन हिय में ज्ञान प्रकासे, आलस पाप अविद्या नासे।।**

# धर्म शिक्षा

**प्रश्न-** धर्म किसे कहते हैं?

**उत्तर-** धर्म उन स्वाभाविक गुणों का नाम है जिनके होने से वस्तु की सत्ता स्थिर रहती है और जिनके न होने पर वस्तु की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती।

**प्रश्न-** हमें दृष्टान्त देकर समझा दो।

**उत्तर-** गर्मी और तेज अग्नि के धर्म हैं। जहाँ अग्नि होगी वहाँ गर्मी और तेज अवश्य होंगे जहाँ गर्मी और तेज न रहेंगे, वहाँ अग्नि भी न रहेगी।

**प्रश्न-** और दृष्टान्त दो।

**उत्तर-** मनुष्य जीवन के लिए शरीर के अङ्ग और प्राण आवश्यक हैं। यदि शरीर का कोई अङ्ग कट जाए तो मनुष्य के जीवन का नाश नहीं होगा, परन्तु प्राणों के न रहने पर मनुष्य कभी जीवित न रहेगा।

**प्रश्न-** क्या जीव का धर्म प्राण धारण करना है?

**उत्तर-** नहीं, जीव का धर्म ज्ञान और प्रयत्न है, अर्थात् ज्ञान के अनुसार कर्म करना।

**प्रश्न-** जीव को कर्म करने की आवश्यकता क्यों हुई?

**उत्तर-** जीव अल्पज्ञ है, अत: उसे दु:ख प्राप्त होता है, उस दु:ख को दूर करने के लिए जीव को कर्म करने की आवश्यकता है।

**प्रश्न-** दु:ख का लक्षण क्या है?

**उत्तर-** आवश्यकता का होना और उसकी पूर्ति के साधनों का न होना दु:ख है, या स्वतन्त्रता का न होना दु:ख है।

**प्रश्न-** दु:ख का अर्थ तो तक़लीफ़ है?

**उत्तर-** दु:ख और तक़लीफ़ दो पर्यावाचक शब्द हैं। जो लक्षण दु:ख का है वही तक़लीफ़ का है।

**प्रश्न-** दु:ख के वास्ते कोई प्रमाण देकर समझाओ।

**उत्तर-** एक मनुष्य घर में बैठा है, उसे कोई कष्ट नहीं है, परन्तु उसे घर से निकलने से बलपूर्वक रोक दिया जाए तो यह बन्धन ही दु:ख है। जब क्षुधा लगे और भोजन न मिले तो दु:ख है; यदि भोजन मिल जावे तो कष्ट नहीं। इसी प्रकार बहुत-से उदाहरण मिल सकते हैं।

**प्रश्न-** जीव अल्पज्ञ क्यों है?

**उत्तर-** एकदेशी अर्थात् परिच्छिन्न होने से।

**प्रश्न-** जीव दु:ख से किस प्रकार छूट सकता है?

**उत्तर-** परमेश्वर के जानने और उसकी आज्ञानुसार कार्य करने से।

**प्रश्न-** परमेश्वर एक है या अनेक।

**उत्तर-** ईश्वर एक है।

**प्रश्न-** ईश्वर कौन है?

**उत्तर-** जो इस जगत् को रचनेवाला, पालनेवाला और नाश करनेवाला है।

**प्रश्न-** ईश्वर के होने में क्या प्रमाण है?

**उत्तर-** जगत् की प्रत्येक वस्तु का नियमानुसार कार्य करना और प्रत्येक वस्तु में नियम होना और इन नियमों के परीक्षार्थ वेद-जैसे पूर्ण पूर्ण शास्त्र का होना

**प्रश्न-** ईश्वर को जगत् के रचने की क्या आवश्यकता थी?

**उत्तर-** उसकी स्वाभाविक दया और न्याय का गुण ही जगत् बनाने का हेतु है।

**प्रश्न-** न्याय और दया तो किसी दूसरे पर होती है, क्या ईश्वर के अतिरिक्त और वस्तु भी जगत् से पहले थी जिसपर न्याय और दया करने के लिए जगत् बनाया?

**उत्तर-** प्रकृति और जीव दो अनादि पदार्थ ईश्वर के अतिरिक्त हैं, अर्थात् ईश्वर, प्रकृति, और जीव तीन वस्तुएँ अनादि हैं। जीवों पर दया और न्याय के लिए ईश्वर जगत् को रचता अर्थात् उत्पन्न करता है।

**प्रश्न-** क्या जगत् से जीव और प्रकृति पृथक् हैं?

**उत्तर-** जीव और प्रकृति अनादि हैं और जगत् उत्पन्न किया हुआ है।

**प्रश्न-** यदि जीव और प्रकृति परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए नहीं हैं तो इन्हें परमेश्वर का आज्ञाकारी किसने बनाया?

**उत्तर-** परमेश्वर अपने सर्वोत्तम गुण आनन्द और सर्वज्ञता आदि के कारण से इनपर अनादि काल से राज्य करता है।

**प्रश्न-** जो लोग परमेश्वर को प्रकृति और जीव आदि का रचनेवाला कहते हैं, क्या उनका विचार असत्य है?

**उत्तर-** उत्पन्न करने का अर्थ प्रकट करना है, अभाव से भाव में लाना नहीं, क्योंकि बिना शरीर में आये जीव का और बिना कार्य-जगत् बने प्रकृति का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए जो शरीर और जगत् का रचनेवाला है वही उत्पन्न करनेवाला है।

**प्रश्न-** ईश्वर कहाँ है?

**उत्तर-** 'कहां' शब्द एकदेशी वस्तु के लिए आता है, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है, इसलिए 'ईश्वर कहाँ है' यह प्रश्न ही ठीक नहीं है। जैसे कोई कहे कि दूध में सफेदी कहाँ है तो कहेंगे कि दूध की बूँद-बूँद में। कोई कहे कि मिश्री में मिठास कहाँ है तो उत्तर होगा कि कण-कण में। इसी प्रकार जो वस्तु प्रत्येक स्थान में रहती हो उसके लिए 'कहाँ' के प्रश्न का उत्तर- 'प्रत्येक स्थान में', 'जगह-जगह पर' होगा, कारण यह है कि कहाँ कहने का अर्थ कोई एक स्थान ज्ञात करना है, अत: यह प्रश्न ही ठीक नहीं है।

**प्रश्न-** यदि ईश्वर प्रत्येक स्थान में है तो हमें दिखाई क्यों नहीं देता, जबकि दूध में सफेदी हम नेत्र से देखते हैं, मिश्री में मिठास हम जिह्वा से ज्ञात करते हैं?

**उत्तर-** वर्त्तमान वस्तु के दृष्टि में न आने के छह कारण होते हैं- प्रथम, वस्तु हमारे नेत्र से बहुत समीप हो, जैसे सुरमा नेत्र से बहुत निकट होने के कारण दृष्टि में नहीं आता। दूसरे, दूर होने से दृष्टिगोचर नहीं होता। तीसरे, अत्यधिक सूक्ष्म होने से जैसे परमाणु विद्यमान होने पर भी दृष्टि में नहीं आते। चौथे, बहुत बड़ा होने से, जैसे हिमालय। पाँचवें, इन्द्रिय अर्थात् चक्षु आदि में विकार आ जाने से, जैसे अन्धे को दूध में सफेदी दृष्टिगोचर नहीं होती। छठे,

आवरण (परदा, दीवार) होने पर हम दीवार के दूसरे ओर की वस्तुओं को नहीं देख सकते।

**प्रश्न**- इन छह कारणों में से हमारे ईश्वर के न जानने का क्या कारण है?

**उत्तर**- क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है इस कारण जीव के अन्दर-बाहर होने से बहुत समीप है और दूसरे बहुत ही सूक्ष्म है, ये ही दो कारण हैं जिससे हमें ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं होता।

**प्रश्न**- जो बहुत निकट हो उसके दृष्टिगोचर न होने का क्या कारण है?

**उत्तर**- क्योंकि मनुष्य को प्रत्येक वस्तु के देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है, इसलिए जब तक नेत्र और वस्तु के मध्य में प्रकाश की किरणें न हों, तब तक नेत्र से उस वस्तु का सम्बन्ध नहीं होता। सुरमे के नेत्र के अति समीप होने के कारण नेत्र सुरमे के मध्य प्रकाश की किरणें नहीं हैं, अत: उसका ज्ञान नहीं होता।

**प्रश्न**- तो क्या ईश्वर को किसी प्रकार जान भी सकते हैं?

**उत्तर**- हम ईश्वर को अवश्य जान सकते हैं।

**प्रश्न**- किस प्रकार जान सकते हैं?

**उत्तर**- जिस प्रकार से नेत्र के सुरमे को जान सकते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर को जान सकते हैं।

**प्रश्न**- नेत्र के सुरमे को देखने के लिए तो केवल एक शीशे की आवश्यकता है। शीशा हाथ में लिया और नेत्र का सुरमा दृष्टि में आया!

**उत्तर**- जैसे नेत्र के सुरमे को देखने के लिए बाह्य शीशे की आवश्यकता है, वैसे ही ईश्वर को देखने के लिए भी एक आन्तरीय शीशा है।

**प्रश्न**- वह आन्तरीय शीशा कौन-सा है?

**उत्तर**- मन। मनुष्य का दिल एक शीशा है जिसमें परमेश्वर का दर्शन किया जा सकता हैं।

**प्रश्न**- मन तो प्रत्येक मनुष्य के पास है, फिर प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर दृष्टिगोचर क्यों नही होता? मन क्या वस्तु है?

**उत्तर**- मन वह भीतरी सूक्ष्म वस्तु है जिसके कारण हमें एक समय में दो वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता।

**प्रश्न**- मन प्रकृति से बना है या अप्राकृत है? वह नित्य है या अनित्य?

**उत्तर**- मन प्रकृति से बना है, उत्पत्तिवाला है, नित्य नहीं है।

**प्रश्न**- यदि शीशे और नेत्र के मध्य में प्रकाश न हो तो शीशे की उपस्थिति में भी नेत्र का सुरमा दिखाई नहीं देता।

**प्रश्न**- मन और ईश्वर के मध्य कौन-सा अँधेरा है, जिसके कारण ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं होता?

**उत्तर**- अविद्या का अँधेरा जब तक विद्या के प्रकाश से दूर न हो, तब तक ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं हो सकता।

**प्रश्न**- अविद्या को दूर करने का उपाय क्या है?

**उत्तर**- सत्य विद्या।

**प्रश्न**- क्या कोई असत्य विद्या भी है?

**उत्तर**- विद्या शब्द ज्ञान का दूसरा नाम है और ज्ञान दो प्रकार का होता है, एक- उत्पत्तिवाले पदार्थों का जानना; दूसरे-नित्य पदार्थों का जानना। जो उत्पत्तिवाले पदार्थ हैं वे सब विकार हैं, इसलिए उनका जानना भी परिणामी है, उसी को असत्य विद्या कहते हैं। सत्य कहते हैं नित्य को, अर्थात् जो तीन काल में रहे। परिणामी की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती इसलिए वह अनित्य है।

**प्रश्न**- ज्ञान कितने प्रकार का होता है?

**उत्तर**- ज्ञान तीन प्रकार का है- विद्या, अविद्या, सत्यविद्या।

**प्रश्न**- अविद्या किसे कहते हैं?

**उत्तर**- पदार्थ के यथार्थ तत्त्व न को जानकर उलटा समझने को अविद्या कहते हैं।

**प्रश्न**- अविद्या गुण है या द्रव्य?

**उत्तर**- अविद्या गुण है।

**प्रश्न**- अविद्या जीव का स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक?

**उत्तर**- अविद्या नैमित्तिक है, स्वाभाविक नहीं।

**प्रश्न**- यदि अविद्या नैमित्तिक गुण है तो उसकी उत्पत्ति का कारण क्या है?

**उत्तर**- इन्द्रियों की कमजोरी और संस्कारों का दोष अविद्या की उत्पत्ति का कारण है।

**प्रश्न**- अविद्या से किस प्रकार का ज्ञान होता है?

**उत्तर**- चेतन अर्थात् ज्ञानवाले जीवात्मा को अचेतन प्रकृति का कार्य जानता, नित्य अर्थात् अनादि वस्तुओं को उत्पत्तिवाली और उत्पत्तिवाली वस्तुओं को अनादि समझना, शरीर आदि अपवित्र पदार्थों को पवित्र और दु:ख देनेवाले पदार्थों को सुख का कारण और दु:ख को सुख समझना-इस प्रकार का ज्ञान अविद्या कहलाता है।

**प्रश्न**- विद्या किसे कहते हैं?

**उत्तर**- चेतन जीवात्मा के ज्ञान का नाम विद्या है। जो अविद्या के गुण से पृथक् हो और जिससे जितने परिणाम होते जावें उसी प्रकार से शुद्ध परिणामी ज्ञान हो, उसे विद्या कहते हैं।

**प्रश्न**- सत्यविद्या किसे कहते हैं?

**उत्तर**- जो सर्वज्ञ ईश्वर का अपरिणामी ज्ञान है, जो देश-काल और वस्तु के भेद से बदलता नहीं, उसे सत्यविद्या कहते हैं।

**प्रश्न**- सत्यविद्या और विद्या का भेद किसी दृष्टान्त से समझाओ?

**उत्तर**- जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश मनुष्यों के लिए संसार के आदि में ईश्वर उत्पन्न किया है, वह प्रत्येक मनुष्य के लिए एक-सा है, लेकिन मानवी सृष्टि का प्रकाश दीपक, लैम्प, गैस, बिजली, आदि अनेक भाँति का है, वह प्रत्येक गृह के लिए पृथक्-पृथक् प्रकार का है।

**प्रश्न**- क्या ईश्वरीय ज्ञान के बिना मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य पर नहीं पहुँच सकता?

**उत्तर**- कदापि नहीं! जिस प्रकार प्रकाश के बिना नेत्र अपने काम को पूरा नहीं कर सकते, ऐसे ही बुद्धि भी बिना ईश्वरीय ज्ञान की सहायता के अपना काम नहीं कर सकती।

**प्रश्न**- नेत्र को काम करने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है चाहे वह सूर्य का हो या लैम्प का, इसी प्रकार बुद्धि को विद्या चाहिए चाहे वह मनुष्य की बनाई हो या ईश्वर की।

**उत्तर**- मनुष्य के जीवनोद्देश्य बहुत कठिन और जीवन का समय बहुत न्यून है, इसलिए मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान से ही कृतकार्य हो सकता है, उदाहरण के रूप में कोई मनुष्य दीपक को हाथ में लेकर नहीं चल सकता।

**प्रश्न**- क्या कारण है कि मनुष्य सूर्य के प्रकाश में दौड़कर चल सकता है और दीपक का प्रकाश लेकर दौड़कर नहीं चल सकता?

**उत्तर**- दीपक का प्रकाश पवन को सहन नहीं कर सकता, ऐसे ही मनुष्य की विद्या तर्क को सहन नहीं कर सकती। दीपक के बुझने का भय चलनेवाले को रोकता है और दूर तक देखने की शक्ति का न होना भी रोकनेवाला है। इसी प्रकार मनुष्य की विद्या केवल मान ली जाती है जिसे कोई ''ईमान'' कहते हैं, और जिस मार्ग पर विद्या की सहायता से चले उसे ''मत'' कहते हैं, परन्तु मत और ईमान से कोई जीवनोद्देश्य पर नहीं पहुँच सकता, केवल धर्म और ज्ञान से पहुँच सकता है।

**प्रश्न**- मत और धर्म तो पर्यायवाचक शब्द हैं?

**उत्तर**- कदापि नहीं! मत के अर्थ मार्ग और धर्म का अर्थ स्वाभाविक गुण है।

**प्रश्न**- धर्म और मत की पहचान क्या है?

**उत्तर**- धर्म में जीवात्मा का सम्बन्ध सिवाय सर्वव्यापक परमेश्वर और अपने आत्मिक गुण के अन्य किसी प्राकृतिक वस्तु और मनुष्य-से नहीं होता, परन्तु मत बिना मनुष्य और प्राकृतिक सम्बन्ध के नहीं चल सकता।

**प्रश्न**- हमें धर्म और मत का दृष्टान्त देकर समझाओ!

**उत्तर**- धर्म के दस लक्षण जो मनु ने लिखे हैं उनको पढ़ो और मुस्लिम तथा ईसाइयों की पुस्तकों को पढ़ो तो धर्म और मत का भेद ज्ञात हो जाएगा।

**प्रश्न**- मनु ने धर्म के दस लक्षण कौन-से लिखे हैं?

**उत्तर**- प्रथम धृति, दूसरे क्षमा अर्थात् सहन करने की शक्ति, तीसरे मन को स्थिर रखना, चौथे चोरी का स्मरण तक न होने देना, पाँचवें शुद्ध अर्थात् पवित्र रहना, छठे अपनी इन्द्रियों को वश में रखना, सातवें बुद्धि को बढ़ाना, आठवें विद्या का ग्रहण करना, नवें सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना, दसवें क्रोध न करना।

(दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह से साभार)

## बसन्त ऋतु की शुभकामनाएं

लो बसन्त ऋतु आई लाई फिर नवजीवन
पेड़, लताएं, दर्भ हर्ष से झूम रहैं।
खेतों में पीली सरसो ने पाँव पसारे
भंवरे फूलों का मुखमंडल चूम रहे है।।

विजय 'अरुण'

## महर्षि तेरी जय जयकार

जिस दिन सुबह उठकर ईश्वर का ध्यान लगाएंगे
अपने घर में प्रतिदिन सन्ध्या हवन रचाएगें
स्वाध्याय को अपने जीवन का अंग बनाएंगे
उस दिन महर्षि तेरी जय - जयकार कर पाएंगे।

हर रविवार को परिवार सहित आर्य समाज में जाएंगे
और भी कुछ लोगों को आर्य समाज से जोड़ पाएंगे
वेदो का संदेश अपने चारों तरफ फैलाएंगे
उस दिन महर्षि तेरी जय जयकार कर पाएंगे।

किसी तरह के पाखण्ड अन्धविश्वास को न अपनाएंगे
आर्य समाज के १० नियमों को जीवन में उतार पाएंगे
आर्य समाज में मुख्य उद्देश परोपकार से जुड़ जाएंगें
उस दिन महर्षि तेरी जय जयकार कर पाएंगे।

सिर्फ आर्य लगाना ही हमारे लिए पर्याप्त न होगा
हमारा चरित्र ही हमारी विरासत का आईना होगा
हमारे व्यक्तित्व को अपने जीवन में धर पाएंगें
उस दिन महर्षि तेरी जय जयकार कर पाएंगे।

भवन ही आर्यो की समाज नहीं कहलाते हैं
हर व्यक्ति चलती फिरती आर्य समाज बन सकता है
उच्च सभाओं के मतभेद जिस दिन सुलझ जाएंगें
उस दिन महर्षि तेरी जय जयकार कर पाएंगें।

**- यश प्रिय आर्य**
आर्य समाज सांताक्रूज़

# गायत्री मन्त्र

**महात्मा आनन्द स्वामी**

एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता गायत्री-मन्त्र में यह है कि इस में स्तुति-प्रार्थना-भक्ति के तीनों अंग विद्यमान हैं, परमात्मा के गुणगान का नाम स्तुति है। प्रार्थना का प्रयोजन यह है कि सार्धक अपने हृदय की पुकार नम्रता से सुनाये। भगवान् तो हृदय के अन्तिम कोर को भी जानते हैं। फिर भी साधक पूरे विनीत भाव से अपनी टेर प्रभु को सुनाये और फिर प्रभु के साथ मिलने की प्रतीक्षा करे।

महर्षि दयानन्द से जब पूछा गया कि स्तुति, प्रार्थना, उपासना किसलिए करनी चाहिए? तो उस का उत्तर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में दिया है कि-स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना, उपासना से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

गायत्री मन्त्र में है- 'ओं भूर्भुवः स्वः।' अर्थात् हे रक्षक, सारी सृष्टि के प्राणाधार, दुःखनाशक, सुख-स्वरूप या सत्चित्-आनन्द परमात्मा। 'तत्सवितुर्वरेण्य' भर्गो देवस्थ धीमहि' आप सारे प्राणियों के माता पिता हैं। हर प्रकार का प्रकाश देने वाले हैं। आप ही वरने योग्य हैं। उपासना करने योग्य हैं। आपके उसी सर्वश्रेष्ठ स्वरूप का हम ध्यान करते हैं। 'धियो यो नः प्रचोदयात्।' हमारी बुद्धियों को अपनी ओर ले चलो। इसमें तीनों बातें आ गयी हैं।

गायत्री मन्त्र आत्म-समर्पण का मन्त्र है, ईश्वर-परायणता प्राप्त होने का मन्त्र है। इस का महत्त्व गायन करना असम्भव सा ही प्रतीत होता है। फिर भी कुछ संकेत ऊपर लिख दिये गये हैं।

गायत्री मन्त्र

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।**

ओ३म्: परमात्मा का निज नाम, जिस की प्रेरणा से सारा संसार बनता है, जिस के सहारे ठहरता है और जिस में लय हो जाता है। रक्षक-

इसी ओ३म् के जप से मोक्षद्वार खुल जाते हैं। ओ३म् ही का ध्यान करके आत्मा को प्राप्त किया जाता है। जप के लिए इसका संक्षिप्त अर्थ 'रक्षक' लेना चाहिए।

**भूः**- प्राणाधार

**भूवः**- दुःखों से छुड़ाने वाला

**स्वः**- सुख ज्ञान आनन्द देने वाला।

**सवितुः**- प्रकाश स्वरूप सारे ऐश्वर्यों का दाता, जगत् का माता, पिता, प्रेरक।

**देवस्यः**- नियमों में चलाने वाले ज्ञान स्वरूप देव के।

**तत्**:- उस।

**वरेण्यम्**:- वरण करने योग्य, स्वीकार करने योग्य, उपासना करने योग्य। समर्पण करने योग्य।

**भर्गः**- शुद्ध स्वरूप, पवित्र करने वाले तेज का।

**धीमहिः**- हम ध्यान करते हैं (काहे के लिए? इसलिए कि)

**यः**- जो सविता देव, परमात्मा।

**नः**- हमारी, हम लोगों की, हम सब की।

**धियः**- बुद्धियों को।

**प्रचोदयात्**:- प्रेरणा करे। अच्छे कर्मों में प्रवृत्त करे। अपनी ओर ले चले।

हे प्राण प्यारे, दुःखों का नाश करने वाले, आनन्द देने वाले, रक्षक भगवन्! जगत् के माता-पिता, प्रेरंक देव के उस वरने योग्य शुद्ध स्वरूप पवित्र करनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करे-अच्छे कामों में लगाए-अपनी ओर ले चले।

गायत्री-मन्त्र की व्याख्या में अब तक अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और अभी न जाने कितनी लिखी जायेंगी परन्तु इसकी पूरी व्याख्या फिर भी पूरी न हो सकेगी। यहाँ तो जप करने के लिए मन्त्र के संक्षिप्त अर्थ लिख दिये गये हैं।

### साधकों के लिए उपयोगी

गायत्री-मन्त्र जप की साधना करने वाले के लिए कुछ उपयोगी बातें लिखी जाती हैं-

(१) गायत्री का जप करने वाले साधकों के लिए आवश्यक है कि वे अपनी मातृभाषा में इसके संक्षिप्त अर्थों या इसके भावार्थ को हृदयंगम कर लें।

(२) साधक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपने जीवन में यम, नियम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान को पूरी सावधानी से ढालता चला जाय। इनको जीवन का अंग बनाए बिना गायत्री का जप पूरा तथा असाधारण लाभकारक नहीं होता।

(३) अ-गायत्री-जप शुद्ध पवित्र होकर करना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व जप प्रारम्भ करना चाहिये और सायंकाल को आकाश में भरपूर तारे निकलने तक। जप सन्ध्या के पश्चात् करना अच्छा है। और प्रातः हवन यज्ञ जप के पश्चात् तथा सायं हवन यज्ञ जप के पश्चात् तथा सायं हवन यज्ञ जप से पूर्व।

ब-गायत्री-जप में बैठने के लिए कुशा ऊन या मृगछाला के आसन उपयुक्त हैं।

स-गायत्री-जप प्रातः पूर्व की ओर तथा सायं पश्चिम की ओर मुख

**(शेष पृष्ठ ९ पर)**

# महर्षि दयानन्द गुणों के खान थे

स्वामी दयानन्द सरस्वती महान् थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे ।।

वदों के अनुयायी और सच्चे प्रभु-भक्त थे।
ऋषियों के पथपर चलते हुये मस्त थे।।

राष्ट्र और धर्म के लिये अपना घर छोड दिया।
धन दौलत अपने परिवार से नाता तोड़ लिया।।

महर्षि दयानन्द आर्यो के लिये सम्मान थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे।।

शिवरात्री के दिन ही उन्हें सच्चा ज्ञान मिला।
उन्हें ऐसा लगा कि मुझे सच्चा भगवान मिला।।

नकली शिव से उन्हें घृणा हो गई।
सोचने लगे अब मेरी किस्मत जाग गई।।

योगी दयानन्द वैदिक संस्कृति के अरमान थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे।।

स्वामी दयानन्द के बचपन का नाम मूलशंकर था।
उनके समय में समाज में बहुत आडम्बर था।।

दयानन्द ने सोचा कि यह कैसा शिव है।
जो एक चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता।।

परोपकारी दयानन्द यहॉ दो दिनों के मेहमान थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे।।

गुरु का आदेश प्राप्त कर वेदों का प्रचार किया।
भूलों भटकों और अनाथों का उद्धार किया।।

ऐसे परोपकारी को कभी भूल सकते नही ।
मर जायें पर वैदिक धर्म छोड़ सकते नहीं।।

महर्षि दयानन्द आर्यों के लिये भगवान थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे।।

कवि ''सोम'' तुझे भी ऋषियों के पथपर चलना है।
वैदिक धर्म के खातिर ही जीना और मरना है।।

वैदिक धर्म से बड़ा संसार का कोई धर्म नहीं।
यज्ञ हवन से बढकर है कोई शुभ कर्म नहीं।।

महर्षि भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की शान थे।
त्यागी तपस्वी और एक सच्चे इन्सान थे।।

शिवरात्रि का दिन एक अमूल्य दिन था।
जिसने ऋषिवर को जहर दिया वह कमीन था।।

शिवरात्रि का दिन भारत का भविष्य था।
दयानन्द को न किसी प्रकार का कोई भय था।।

महर्षि दयानन्द वेदज्ञ और गुणों के खान थे।
त्यागी तपस्वी-और एक सच्चे इन्सान थे।।

रचचिता

**डॉ. रवीन्द्र कुमार शास्त्री** ''सोम''
एम. ए. संस्कृत, हिन्दी-शिक्षाशास्त्र,
पी. एच. डी. साहित्य-व्याकरणाचार्य
गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ फरीदाबाद
हरियाणा.
मो. : ९९५३१३१०८४

# आया नया साल

खुशियां मनाओ आया नया साल ।।
- नये साल में सुख होगा चंहु ओर ।
ऐसी हम बान्धे आशा की डोर ।।
सपने सजाओ आया नया साल ।

- नये साल से हमें यही आरजू ।
फैले चंहु ओर प्यार की खुशबू ।।
प्यार छलकाओ आया नया साल ।

- नया साल लाए प्यार का सन्देश ।
उन्नत हो दुनिया का हरइक देश ।।
हर्ष दिखाओ आया नया साल।

- नया साल पूरी करे हर कामना ।
शुभ हो विचार और शुभ भावना ।।
सभी हर्षोऔ आया नया साल ।

- नया साल हमको करे खुशहाल ।
भर भरलाए सोने के थाल ।।
झुमो, नाचो, गाओ, आया नया साल ।

**- विजय 'अरुण'**

# महान शिक्षाविद् महात्मा हंसराज जी की दृष्टि में शिक्षा का आदर्श

-प्रो. (डॉ.) सुन्दरलाल कथूरिया, डी.लिट.

भारत माता ने समय-समय पर अनेक त्यागी-तपस्वियों बलिदानियों, वीरों, क्रांतिकारियों महापुरुषों को जन्म दिया है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, योगेश्वर श्री कृष्ण, महर्षि दयानन्द अप्रतिम बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द, महान शिक्षा विद् महात्मा हंसराज आदि इसी भूमि की देन हैं। ऋषिवर दयानन्द के अनन्य भक्त, वैदिक मिशन के प्रति सर्वात्मना समर्पित, आर्यसमाज के ध्वज-वाहक, दलितोद्धारक, शुद्धि-आन्दोलन के पुरोधा, सर्वस्व त्यागी, नि:स्वार्थ समाज सेवी, चिन्तक मनीषी महात्मा हंस राज जी महान शिक्षाविद् और आदर्श शिक्षक थे। शिक्षा-क्षेत्र में की गई उनकी नि:स्वार्थ सेवाएँ स्पृहणीय एवं अनुकरणीय हैं। उनके जैसा सर्व त्यागी, शिष्य-वत्सल, नि:स्वार्थ शिक्षक मिलना बहुत कठिन है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, कुशाग्र बुद्धि, आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रति दृढ़ निष्ठा रखने वाले महान शिक्षाविद महात्मा हंसराज जी का जन्म अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत के होशियार पुर जनपद के ग्राम बजवाड़ा में १९ अप्रैल, सन् १८६४ ई. में एक सामान्य परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम श्री. चुन्नीलाल और भाता का नाम श्रीमती गणेश देवी था। इनका प्रारंभिक जीवन बहुत गरीबी एवं अभावों में व्यतीत हुआ तथा इनके सिर से पिता की छत्रछाया भी अल्पायु में ही उठ गई। अपने गाँव से प्राइमरी की शिक्षा प्राप्त कर होशियार पुर से दसवीं की परीक्षा पासकर उन्होंने लाहौर के राजकीय कालेज से बी.ए.की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की और पूरे पंजाब प्रांत में द्वितीय स्थान पर रहे। लाहौर में उन्हें ने बड़े भाई श्री मुल्खराज जी के पास रहकर अपना अध्ययन पूर्ण किया।

लाहौर में श्री हंसराज जी अनेक तपोनिष्ठ आर्यनेताओं एवं आर्यसमाज के निकट सम्पर्क में आए। इन आर्यनेताओं में लाला साईदासनी, लाला लाजपत रायजी, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी आदि प्रमुख थे। महर्षि दयानन्द के देहावसान के बाद लाहौर के ऋषि भक्त उनकी स्मृति में एक ऐसा स्मारक बनाना चाहते थे जो चिरस्थाई हो। इस दृष्टि से एक ऐसी शिक्षण संस्था की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई कि जिसमें प्राचीन विषयों के साथ जीवनोपयोगी आधुनिक विषयी का भी समावेश हो। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी ने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल तथा कॉलेज खोलने का प्रस्ताव रखा, जिसे कर तल ध्वनि से सभीने सहर्ष स्वीकार किया और इस मद में जी खोल कर दान भी दिया। २८ फरवरी, १८८६ के दिन आर्य समाज लाहौर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर इस विषय पर पुर जोर चर्चा हुई और अन्त में लाला हंस राजजी ने कहा कि मैं अपना सारा जीवन बिना वेतन के दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल, कॉलेज को समर्पित करता हूँ। उनकी इस त्यागवृत्ति की तत्कालीन समाचार-पत्रों में भूरि-भूरि, प्रशंसा हुई। उनको इस घोषणा से आर्य जनों का उत्साह द्विगुणित हो उठा तथा उनमें प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी।

एक जून, १८८६ ई. को आर्य समाज, लाहौर के भवन में खुले डी.ए.वी. स्कूल के प्रथम अवैतनिक प्रधानाध्यापक महात्मा हंसराज ही बने। तीन वर्ष के बाद इस स्कूल ने कॉलेज का रूप ले लिया और तब महात्मा हंसराज जी को ही इसका प्राचार्य बनाया गया। अपने अग्रज मुल्खराज जी द्वारा, प्रति माह दिए जाने वाले चालीस रुपयों से महात्मा जी ने अपने परिवार का भरण पोषण किया पर अपनी संस्था से एक पैसा भी नहीं लिया! इसके विपरीत, उन्हें जो भी दान-दक्षिणा या भेंट प्राप्त होती, उसे भी डी.ए.वी. संस्था को दे देते। उन्होंने अपने अनेक सहयोगियों को भी नाममात्र के वेतन पर कार्य करने की प्रेरणा दी तथा असंख्य विद्यार्थियों का निर्माण किया। डी.ए.बी. शिक्षण संस्थाओं में पच्चीस वर्ष तक अपनी अवैतनिक सेवाएँ प्रदान करने के उपरान्त उन्होंने स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति लेली तथा नि:स्वार्थ समाज सेवा में जुट गए।

महात्मा हंसराज जी एक आदर्श शिक्षक, प्रबुद्ध उपदेशक, उत्कृष्ट प्रवचन कर्ता, चिन्तक-मनीषी और सुयोग्य लेखक थे। एक लम्बे समय तक शिक्षा जगत् से जुड़े रहने के कारण शिक्षा के आदर्श स्वरूप के विषय में उनके अपने सुस्पष्ट विचार थे, जिन्हें उन्होंने अपने कुछ लेखों में वाणी दी है। महात्मा हंसराज जी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाना है। 'मनुर्भव' का दिव्य सन्देश देना शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य है। मनुष्य बनने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा के द्वारा छात्रों का सर्वांगीण विकास हो। साक्षर हो जाना या नौकरी पा लेना शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य नहीं है। अर्थोपार्जन की अन्धी दौड़ में आज के अनेक शिक्षित मानवता को भूलकर अध: पतन के गर्त में गिरते जा रहे हैं तथा 'साक्षरा विषरीताश्चैव राक्षसा: एव केवलम्' की उक्ति को चरितार्थ कर' रहे हैं।

शिक्षा के द्वारा छात्र के सर्वांगीण विकास का आशय यह है कि उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास किया जाए। आदर्श शिक्षा में इन तीनों का समावेश परमावश्यक है। इन तीनों के समुचित विकास से ही मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बन सकेगा और अन्तत: जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-४ मुम्बई अप्रैल - २०१७ | पृष्ठ-१६ | मूल्य- रु. ९/-

चैत्र २०७३ ( २०१७) | Post Date : 25-04-2017 | MCN/136/2016-2018 | पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

शिक्षा का पहला आदर्श यह होना चाहिए कि छात्रों का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो, वे बलवान, निरोग और पूर्णत: स्वस्थ हों क्योंकि 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् निश्चित रूप से स्वस्थ शरीर ही धर्म का पहला साधन है। विद्यार्थी का धर्म है विदयाध्ययन और उसके लिए शरीर का स्वस्थ रहना परमावश्यक है। प्राय: यह देखने में आता है कि विद्यार्थी समय कुसमय पढ़ने के फेर में शरीर का सत्यानाश कर बैठते हैं और फिर न इधर के रहते हैं, न उधरके। शिक्षा में शारीरिक शिक्षा को भी समुचित महत्त्व दिया जाना चाहिए तथा छात्रों को इसके महत्त्व से अवगत कराना चाहिए।

शरीर को अच्छा व स्वस्थ रखने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। उन दिनों बाल-विवाह की प्रथा थी, इसलिए बहुत-से छात्र विवाहित होते थे, अत: महात्मा हंसराज जी ने लिखा हैं कि 'प्रत्येक छात्र को जान लेना चाहिए कि व ब्रह्मचारी है। उसका सम्बन्ध न अपनी स्त्री से और न अन्य स्त्री से होना चाहिए।'

उसे यह समझना चाहिए कि केवल पवित्र रहना ही नहीं, अपितु ब्रह्मचर्य से हडिडयों को दृढ़ बनाना है।.... स्मरण रखो, ब्रह्मचर्य आपमें धर्म भाव, मुख पर लालिमा एवं तेज उत्पन्न करेगा।'

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दूसरी आवश्यक बात है अच्छी आदतों का विकास। समय पर सोना और समय पर उठना प्रतिदिन स्नान, दन्तधावन आदि करना तथा तपोनिष्ठ जीवन जीना स्वस्थ रहने के साथ दीर्घायु-प्रप्ति का भी मूल मन्त्र है। प्रतिदिन व्यायाम करना उत्तम स्वास्थय प्राप्ति के लिए तीसरी आवश्यक बात है। महात्मा हंस राज की व्यायाम की परीक्षा को अनिवार्य बना देने के पक्षधर रहे हैं।

महात्मा हंसराज जी की दृष्टि में शिक्षा का दूसरा आदर्श है छात्रों की मानसिक उन्नति। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त छात्रों को जो पुस्तकें भी पढ़नी चाहिए जिनसे उनके मस्तिष्क का विकास हो और उनमें सद्विचारों का उदय हो। उन्हें कूप-मण्डूक न बनकर ज्ञान के विशाल वारिधि में डुबकी लगानी चाहिए। इसके लिए वे अच्छे पुस्तकालयों का सदुपयोग कर सकते हैं। केवल पाठ्य-पुस्तकों को रट लेने से ही छोत्रों का समुचित मानसिक विकास नहीं हो सकता, भले ही उससे वे परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लें, पर सीमित ज्ञान से जीवन की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की जा सकती।

महात्मा हंसराज जी की दृष्टि में शिक्षा का तीसरा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आदर्श है छात्रों की आत्मिक उन्नति। छात्र अपनी अन्तरात्मा की आवज़ को सुनकर पाप-कर्मों से बचकर धर्म के मार्ग पर चल सकें, उनमें ऐसी योग्यता को उत्पन्न करना शिक्षा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं। छात्रों की अन्तरात्मा को जागरूक बनाना, उन्हे आत्मिक विद्या देना, ऐसी शिक्षा देना कि उनमें श्रेष्ठ भावों का उदय हो और वे सच्चरित्र हों- यह शिक्षा का चरम आदर्श है। इसके लिए धार्मिक और नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रमों का अनिवार्य अंग होनी चाहिए। यह शिक्षा जहाँ एक ओर छात्रों की अन्तरात्मा को बलवान बनाएगी, पापकर्मों से बचाने के लिए धार्मिक भावों का पहरा बिठाएगी, उन्हें ईश-भक्ति की प्रेरणा देगी वहीं उनमें आत्म-विश्वास का भाव भी जागृत करेगी। यदि शिक्षा में उन आदर्शों का समावेश हो जाए, तो छात्रों को अपने भावी जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करने में तनिक भी कठिनाई न हो।

आज जबकि नई शिक्षा-नीति की चर्चा ज़ोरों पर है, शिक्षा विदों को महात्मा हंसराजजी के शिक्षा के आदर्शों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए तथा उन्हें नई शिक्षा नीति में समाविष्ट करना चाहिए। इससे न केवल छात्रों का हित-साधन होगा, वरन् राष्ट्र भी अन्नति की ओर अग्रसर होगा।

पूर्व प्रोफेसर अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
भावनगर विश्वविद्यालय

सम्पर्क : बी-३/७९, जनकपुरी
नई दिल्ली - ११००५८
(मो.) : ०९७१८४७९९७०